देवी-देवताओं की उपासना : श्री गणपति - खण्ड ५

श्री गणेश अथर्वशीर्ष एवं संकटनाशनस्तोत्र (अर्थसहित)

हिन्दी (Hindi)

संकलनकर्ता

हिन्दू राष्ट्र-स्थापना के उद्घोषक

सच्चिदानंद परब्रह्म डॉ. जयंत बाळाजी आठवले

सनातन संस्था

प्रस्तुत पुनर्मुद्रण की १,००० प्रतियां
एवं अब तक ७,७०० प्रतियां प्रकाशित !

सच्चिदानंद परब्रह्म डॉ. जयंत आठवलेजी के अद्वितीय कार्य का संक्षिप्त परिचय

१. अध्यात्म के प्रसार हेतु 'सनातन संस्था' की स्थापना !

२. 'गुरुकृपायोग' नामक साधनामार्ग के जनक !

३. हिन्दू राष्ट्र की (ईश्वरीय राज्य की) स्थापना की उद्घोषणा (वर्ष १९९८)

४. गुरुकुलसमान 'सनातन आश्रमों' की निर्मिति !

५. ग्रन्थ-रचना : मार्च २०२४ तक ३६५ ग्रन्थों की १३ भाषाओं में ९५ लाख ३१ सहस्र प्रतियां !

६. शारीरिक, मानसिक तथा अनिष्ट शक्तियों की पीडाओं की उपचार-पद्धतिसम्बन्धी शोध !

७. 'सनातन प्रभात' नियतकालिकों के संस्थापक-सम्पादक !

८. 'हिन्दू राष्ट्र' की स्थापना हेतु सन्त, सम्प्रदाय, हिन्दुत्वनिष्ठ आदि का संगठन एवं उन्हें आध्यात्मिक स्तर पर दिशादर्शन !

(सम्पूर्ण परिचय हेतु पढें – 'www.Sanatan.org'.)

सच्चिदानंद परब्रह्म डॉ. आठवलेजी का साधकों को आश्वासन !

स्थूल देहको है स्थल कालकी मर्यादा ।
कैसे रहूं सदा सभीके साथ ॥
सनातन धर्म मेरा नित्य रूप ।
इस रूपमें सर्वत्र मैं हूं सदा ॥

– जयंत बाळाजी आठवले
१८.५.१९९६

डॉ. जयंत आठवलेजी की 'सच्चिदानंद परब्रह्म' उपाधिसम्बन्धी विवेचन !

१३.७.२०२२ से 'सप्तर्षि जीवनाडीपट्टिका' के वाचन के माध्यम से सप्तर्षि की आज्ञा अनुसार परात्पर गुरु डॉ. आठवलेजी को 'सच्चिदानंद परब्रह्म डॉ. जयंत बाळाजी आठवले' सम्बोधित किया जा रहा है । इन उपाधियों के अनुसार प्रस्तुत ग्रन्थ के मुखपृष्ठ पर एवं ग्रन्थ में आवश्यक स्थानों पर वैसा उल्लेख किया है । **– (पू.) श्री. संदीप आळशी, सनातन के ग्रन्थों के संकलनकर्ता** (२४.७.२०२२)

भूमिका

श्री गणपति विद्या के देवता, विघ्नहर्ता हैं, उनकी आराधना सर्वत्र की जाती है । अथर्वशीर्ष एवं संकटनाशनस्तोत्र, दोनों स्तोत्र अधिक प्रचलित हैं, वे इस लघुग्रन्थ में अर्थसहित दिए गए हैं ।

अधिकांश लोगों को देवता से सम्बन्धित जो थोडा-बहुत ज्ञान रहता है, वह बचपन में पढी अथवा सुनी गई कहानियों द्वारा होती है । इस अल्प ज्ञान के कारण देवतापर विश्वास भी अल्प ही रहता है । देवताओं से सम्बन्धित अधिक ज्ञान विश्वास की वृद्धि में सहायक होता है, जिससे साधना भी उचित पद्धति से होती है । इस दृष्टिकोण से इस लघुग्रन्थ में श्री गणपति से सम्बन्धित, प्रायः अन्यत्र न पाया जानेवाला उपयुक्त अध्यात्मशास्त्रीय ज्ञान दिया है। गणपति से म्सम्बन्धित अध्यात्मशास्त्रीय दृष्टिकोण से विस्तृत ज्ञान सनातन के ग्रन्थ 'श्री गणपति' में दिया गया है । देवता से सम्बन्धित ज्ञान के साथ ही अध्यात्मशास्त्रीय ज्ञान होने पर साधना भली प्रकार से होती है । इसके लिए सनातन के अध्यात्मशास्त्र का ज्ञान देनेवाले ग्रन्थ एवं लघुग्रन्थ उपलब्ध हैं ।

१. श्री गणपति

महर्षि पाणिनी के अनुसार 'गण' का अर्थ है – 'अष्टवसुओं का समूह' । 'वसु' का अर्थ है – दिशा, दिक्पाल या दिक्देव। श्री गणपति दिशाओं के पति, स्वामी हैं । उनकी स्वीकृति के बिना अन्य देवता किसी भी दिशा से पूजा स्थलपर नहीं आ सकते । इसीलिए कोई मंगलकार्य या किसी देवता की पूजा करते समय प्रथम गणपति की पूजा की जाती है । गणपति के एक बार दिशाएं मुक्त कर देने पर हम जिस देवता की पूजा करेंगे, वे देवता पूजास्थल पर आ सकते हैं । इसी को महाद्वारपूजन या महागणपतिपूजन कहते हैं।

१ अ. श्री गणपति की कुछ प्रमुख विशेषताएं

१. जो भाषा हम बोलते हैं, उस नादभाषा का देवताओं की प्रकाशभाषा में एवं देवताओं की प्रकाशभाषा का हमारी नादभाषा में गणपति अनुवाद करते हैं । अन्य देवता अधिकांशतः प्रकाशभाषा ही समझ सकते हैं । हमारी नादभाषा गणपति शीघ्र समझ सकते हैं। इसलिए वे एक ऐसे देवता हैं जो शीघ्र प्रसन्न होते हैं ।

२. मानवदेह के विविध कार्य विविध शक्तियों द्वारा होते रहते

हैं । इन विविध शक्तियों की मूलभूत शक्ति को प्राणशक्ति कहते हैं । गणपति का नामजप प्राणशक्ति बढाता है, तथा गणपति के नामजप से भूतबाधा, करनी आदि अनिष्ट शक्तियों की पीडाओं का निवारण भी होता है ।

१ आ. मूर्ति की कुछ विशेषताओं का भावार्थ

१. सूंड : जिस मूर्ति में सूंड के अग्रभाग का मोड दाहिनी ओर हो, उसे दक्षिणमूर्ति, अर्थात दक्षिणाभिमुखी मूर्ति कहते हैं । यहां दक्षिण का अर्थ है दक्षिण दिशा अथवा दाहिनी ओर । ऐसी मूर्ति की पूजा के अन्तर्गत कर्मकाण्ड के सर्व नियमों का यथार्थ पालन आवश्यक है । इससे सात्त्विकता बढती है एवं दक्षिण से प्रसारित रज तरंगों से कष्ट नहीं होता ।

जिस मूर्तिमें सूंड के अग्रभाग का मोड बाईं ओर हो, उसे वाममुखी कहते हैं । वाम अर्थात बाईं ओर अथवा उत्तर दिशा । बाईं ओर चंद्रनाडी होती है । यह शीतलता प्रदान करती है । उत्तर दिशा अध्यात्म के लिए पूरक (आनंददायक) है । अतः पूजा में अधिकतर वाममुखी मूर्ति रखी जाती है । इनकी पूजा प्रचलित पद्धति से की जाती है ।

२. मोदक : मोदक का आकार नारियल समान, अर्थात 'ख'

नामक ब्रह्मरन्ध्र के खोल समान होता है । कुण्डलिनी के 'ख'तक पहुंचने पर आनन्द की अनुभूति होती है । हाथ में रखे मोदक का अर्थ है कि उस हाथ में आनन्द प्रदान करने की शक्ति है ।

मोदक ज्ञान का प्रतीक है, इसलिए उसे ज्ञानमोदक भी कहते हैं।

३. अंकुश : आनन्द एवं विद्या की प्राप्ति में विघातक शक्तियों का नाश करनेवाला ।

४. पाश : गणपति के हाथ में पाश है, अर्थात गणपति अनिष्ट शक्तियों पर पाश डालकर दूर ले जाते हैं ।

५. कटि से (कमर से) लिपटा नाग : विश्वकुण्डलिनी

६. लिपटे हुए नागका फण : जागृत कुण्डलिनी

७. मूषक : मूषक अर्थात रजोगुण, जो गणपति के नियंत्रण में है।

१ इ. उपासना

१. दूर्वा : गणेशपूजा में दूर्वा का विशेष महत्त्व है । दूर्वा वह है जो गणेश के दूरस्थ पवित्रकों को पास लाती है । गणपति को अर्पित की जानेवाली दूर्वा कोमल होनी चाहिए । इसे बालतृणम् कहते हैं । सूख जाने पर यह सामान्य घास जैसी हो जाती है ।

दूर्वा की पत्तियां विषम संख्या में (जैसे ३, ५, ७) अर्पित करनी चाहिए ।

२. लाल वस्तु : गणपति का वर्ण लाल है; उनकी पूजा में लाल वस्त्र, लाल फूल एवं रक्तचन्दन का प्रयोग किया जाता है। लाल रंग के कारण वातावरण से गणपति के पवित्रक मूर्ति में अधिक मात्रा में आकर्षित होते हैं एवं मूर्ति के जागृतिकरण में सहायता मिलती है ।

३. चतुर्थी : जिस दिन गणेश तरंगें प्रथम पृथ्वी पर आईं, अर्थात जिस दिन गणेशजन्म हुआ, वह दिन था माघ शुक्ल चतुर्थी । उसी दिन से गणेशजी का चतुर्थी से सम्बन्ध स्थापित हुआ ।

२. स्तोत्र

'स्तूयते अनेन इति' अर्थात जिसके योग से देवता का स्तवन किया जाए, उसे स्तोत्र कहते हैं । स्तोत्र में देवता की स्तुति होती है, साथ ही स्तोत्रपाठ करनेवाले के सर्व ओरसे कवच (संरक्षक आवरण) निर्मित करने की शक्ति भी होती है । यह स्तोत्रपाठ 'तदर्थभावपूर्वक = तत् + अर्थ + भावपूर्वक', अर्थात उसके (स्तोत्र के) अर्थ को समझकर भावसहित (भावपूर्वक) पाठ किया

जाए । केवल यन्त्रवत प्राणहीन उच्चारण करने से कोई लाभ नहीं होगा । उच्चारण ऐसा होना चाहिए, जिसके फलस्वरूप जपकर्ता भगवद्भावयुक्त तथा भगवच्छक्तियुक्त हो जाए अर्थात भक्त देवता की शक्ति से युक्त हो जाए ।

स्तोत्रों से उनकी फलश्रुति संलग्न होती है । आत्मज्ञान सम्पन्न ऋषि-मुनियों को इस वाङ्मय का स्फुरण परावाणी द्वारा हुआ। फलश्रुति के साथ उनका संकल्प जुडा है; अतः स्तोत्रपाठ करनेवाले को अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है ।

२ अ. अथर्वशीर्ष : थर्व का अर्थ है उष्ण (गरम), अथर्व का अर्थ है शान्ति, तथा शीर्ष का अर्थ है, मस्तक । जिसके पुरश्चरण से शान्ति प्राप्त होती है, उसे अथर्वशीर्ष कहते हैं । जैमिनी ऋषि की सामवेदीय शाखा के शिष्य मुद्गल ऋषि ने 'साममुद्गल गणेशसूक्त' की रचना की । तत्पश्चात उनके शिष्य गणक ऋषि ने 'गणपति अथर्वशीर्ष' की रचना की । कई स्तोत्रों में देवता का ध्यान, अर्थात मूर्ति का वर्णन पहले किया जाता है, तदुपरान्त स्तुति । इसके विपरीत अथर्वशीर्ष में स्तुति पहले है, जबकि ध्यान तदुपरान्त किया जाता है ।

अथर्वशीर्ष के आगे दिए तीन प्रमुख भाग हैं –

१. शान्तिमन्त्र : आरम्भ में ‘ॐ भद्रं कर्णेभिः...।’ एवं ‘स्वस्ति न इन्द्रो...।’ ये मन्त्र तथा अन्त में ‘सह नाववतु...।’ मन्त्र हैं ।

२. ध्यानविधि : ‘ॐ नमस्ते गणपतये’ से ‘वरदमूर्तये नमः’ तक, दस मन्त्र हैं ।

३. फलश्रुति : ‘एतदथर्वशीर्षं योऽधीते’ आदि चार मन्त्र ।

श्री गणेश देवता का अभिषेक करते हुए, अथर्वशीर्ष के इक्कीस आवर्त्तन किए जाते हैं । ‘ॐ नमस्ते गणपतये’ से ‘वरदमूर्तये नमः’ तक श्लोकोच्चारण करने से, एक आवर्त्तन पूर्ण होता है । प्रत्येक आवर्त्तन के उपरान्त फलश्रुति के उच्चारण की आवश्यकता नहीं है । इक्कीसवें अर्थात अन्तिम आवर्त्तन के उपरान्त फलश्रुति के चार मन्त्रों का उच्चारण करें ।

स्तोत्र में उल्लेखित है कि प्रतिदिन दो आवर्त्तनों का, फलश्रुति सहित उच्चारण करना आवश्यक है, अन्यथा अभीष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती । एक से अधिक आवर्त्तन करते हुए भी अन्त में एक ही बार फलश्रुति का उच्चारण करें । इसी प्रकार प्रत्येक आवर्त्तन से पूर्व तथा अन्त में शान्तिमन्त्र का उच्चारण आवश्यक

नहीं है, अपितु समस्त आवर्त्तनों के आरम्भ तथा अन्त में एक ही बार शान्तिमन्त्र का उच्चारण करें ।

अथर्वशीर्ष स्तोत्र के उच्चारण से शरीर में सूक्ष्म आध्यात्मिक शक्ति निर्मित होती है, इसलिए आरंभ तथा अंत में शान्तिपाठ उच्चारण आवश्यक है; अन्यथा साधकों को कष्ट होने की आशंका होती है ।

अथर्वशीर्ष का धीमी गति से, लयबद्ध रीति से उच्चारण करें। स्तोत्रपाठ से पूर्व स्नान करें । धुला वस्त्र, मृगछाल, ऊनसे बना कम्बल अथवा दर्भ की चटाई पर बैठें । पाठ पूर्ण होने तक आसन परिवर्तित न करना पडे, ऐसी स्थिति में बैठें । दक्षिण दिशा को छोड अन्य किसी भी दिशा की ओर मुख कर बैठें । पाठ आरम्भ करने से पूर्व गणेश की पूजा करें, अक्षत, दूर्वा, शमी (श्वेत कीकर) वृक्ष के फूल एवं लाल रंग के फूल चढाएं । पूजा न कर सकें, तो कुछ मिनट गणेशजी का ध्यान करें, नमस्कार कर पाठ आरम्भ करें । गणेशजी की मूर्ति की ओर अथवा ओंकार की ओर देखते हुए स्तोत्र का पाठ करें, अथवा दृष्टि के समक्ष गणेशमूर्ति की कल्पना करें । (सनातन संस्था द्वारा गणपति के सात्त्विक चित्र

तथा मूर्तियां बनाई गई हैं ।) इनसे एकाग्रता शीघ्रता से साध्य होती है । शुचिर्भूत होकर, स्तोत्रपाठ करने से आध्यात्मिक शक्ति ग्रहण करने की क्षमता बढती है ।

२ आ. संकटनाशनस्तोत्र : यह एक प्रभावी स्तोत्र है । नारदपुराण के इस स्तोत्र की रचना नारदमुनि ने की है । फलश्रुति में बताए अनुसार इष्ट फलप्राप्ति के लिए दिन में तीन बार (प्रातः, दोपहर एवं सायंकाल) स्तोत्रपाठ किया जाए ।

स्तोत्रपाठ सहजतापूर्वक हो, इस हेतु इस लघुग्रन्थ में स्तोत्रपाठ करते हुए हम कहीं-कहीं जहां आवश्यक एक क्षण के लिए रुकते हैं, वहां दो शब्दों के बीच स्वल्प-विराम दिए हैं । इसी प्रकार 'शब्द के अन्त में अनुस्वार हैं; अगले शब्द का पहला अक्षर व्यंजन हो, तो अनुस्वार को बिन्दु द्वारा दर्शाएं', संस्कृत लेखन की यह पद्धति है; यद्यपि अनुस्वार को जहां हो सके ङ्, ञ्, ण्, न्, म् आदि परस वर्णों से दर्शाया गया है । ऐसा करने से उच्चारण करना सहज होगा । मराठी भाषा के अनुसार 'संहिता' आदि शब्दों में जिस प्रकार अनुस्वार का उच्चारण करते हैं, उसी प्रकार किया जाए । जहां ऐसे उच्चारण परसवर्णों द्वारा दर्शाना सम्भव नहीं, वहां अनुस्वार ही प्रयुक्त किया

गया है । अथर्वशीर्ष स्तोत्र उपनिषदों का स्तोत्र है, इसलिए इसका उच्चारण शुद्ध तथा उचित पद्धति से करना आवश्यक होता है । इसे शब्दों में पूर्णतः समझा पाना सम्भव नहीं है कि स्तोत्रों का उच्चारण कैसे करना चाहिए । इस सन्दर्भ में सरल नियम यही है कि आ, ई, ऊ अक्षरों का दीर्घ उच्चारण करें।

ये दोनों स्तोत्र किस प्रकार पढे जाएं, यह साधकों को ज्ञात होने हेतु सनातन ने ऑडियो सीडी भी प्रकाशित की है ।

ध्यान रखनेयोग्य एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है कि अथर्वशीर्ष के श्लोक क्र. ६ में 'त्वम् ब्रह्मा..' के अन्तर्गत 'त्वम्' शब्द अगले नाम से सम्बन्धित है । इसलिए मध्य भाग में जब क्षणभर ठहरना चाहें, तो 'त्वम्' के पश्चात न ठहरें अपितु 'त्वम्' के साथ दिया गया नाम उच्चारित कर ही ठहरें; उदा. 'रुद्रस्त्वम्' का उच्चारण करते हुए ठहरना हो, तो त्वम् रुद्रः कहकर ठहरें तथा आगे 'त्वम् इन्द्र...' कहकर श्लोक पूर्ण करें । इसी प्रकार, 'त्वम् अवस्थात्रयातीतः ।' का उल्लेख कुछ प्रतियों में नहीं पाया जाता, अतः कोष्ठक में दिया है।

श्लोकों का अर्थ सम्बन्धित स्तोत्रों के अन्त में दिया गया है।

पाठक, कृपया प्रत्येक शब्द तथा श्लोक के अर्थ को समझकर स्तोत्रपाठ करें । इससे स्तोत्र का पाठ अधिक भावपूर्वक हो पाता है । अर्थ को भली-भांति समझने के उपरान्त दिए गए अर्थ का पाठ करने की आवश्यकता नहीं है । स्तोत्रपाठ धाराप्रवाह तथा लयबद्ध रीति से होने की दृष्टि से, इन स्तोत्रों के अर्थ अन्त में भी दिए गए हैं ।

इस लघुग्रन्थ में जो स्तोत्र दिए गए हैं, उनका पाठ करनेवालों को उनसे अधिकाधिक आध्यात्मिक लाभ प्राप्त हो, यह श्री गुरुचरणों में प्रार्थना । – **संकलनकर्ता**

।। श्री गणेशाय नमः ।।

नामजप के विषय में मार्गदर्शन करनेवाला सनातनका ग्रन्थ !

नामजप करने की पद्धतियां

- साधना के आरम्भिक काल में नामजप लिखने का महत्त्व
- वैखरी, मध्यमा, पश्यंती एवं परा वाणी के नामजप की विशेषताएं